17 July 2019

BCh

5

वर्णाश्रम-व्यवस्था : वर्ण

(Varnashrama System : Varna)

इस अध्याय में हम जानेंगे :

- वर्ण का अर्थ
- वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त
- वर्ण और जाति में भेद
- वर्णों के कर्त्तव्य या 'वर्ण' धर्म

वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत समाज परम्परागत चार वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित किया गया था। समाज को केवल चार भागों में ही विभाजित करने का एक वैज्ञानिक उद्देश्य भी ढूंढा जा सकता है। ज्ञान, रक्षा, जीविका तथा सेवा मनुष्य की ये चार स्वाभाविक इच्छाएं हैं। सामाजिक व्यवस्था के विशेषज्ञों का कथन है कि इन्हीं चार इच्छाओं या मानव-प्रवृत्तियों की पूर्ति के लिए ही समाज को चार भागों में विभाजित किया गया था।

'वर्ण' का अर्थ

(Meaning of Varna)

प्रायः 'जाति' और 'वर्ण' इन दोनों अवधारणाओं को लोग एक मान लेते हैं और एक ही अर्थ में इन दोनों का प्रयोग भी करते हैं। परन्तु वास्तव में यह गलत है और ये दोनों अवधारणाएं एक-दूसरे से भिन्न हैं। 'वर्ण' शब्द का अर्थ रंग और वर्ण दोनों ही होता है। अधिकतर विद्वान् जो भारतीय जाति-प्रथा की उत्पत्ति में प्रजातीय सिद्धान्त को मानते हैं 'वर्ण' शब्द को रंग के ही अर्थ में प्रयोग करते हैं। साहित्यिक दृष्टिकोण से वर्ण शब्द 'वृञ् वरणे' या वरी धातु से बना है जिसका अर्थ है वरण करना या चुनना। हो सकता है कि यह चुनाव पेशे के चुनाव की ओर इशारा करता है और इस रूप में वर्ण का अर्थ उस समूह से था जोकि एक विशेष प्रकार के पेशे को अपनाता था या समाज द्वारा निर्धारित कुछ निश्चित कार्यों को करता था।

Scanned with CamScanner

डॉ. कैलास शर्मा ने लिखा है कि वैदिक साहित्य में वर्ण शब्द का प्रयोग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों और इनके धर्मों एवं गुणों के वर्णन के अर्थ में ही किया गया मालूम पड़ता है। दूसरी बात यह है कि हिन्दू समाज को चार हिस्सों में बांटने की प्रणाली को वर्ण-व्यवस्था कहते हैं। चूंकि वैदिक काल के लोगों के लिए यह सम्भव न था कि वे शारीरिक लक्षणों को ठीक से माप सकें, इसलिए यह आशा नहीं की जा सकती है कि वर्ण का अर्थ रंग या प्रजातीय भिन्नता हो सकता है।

मोटे तौर पर हम यह कह सकते हैं कि वर्ण सामाजिक विभाजन की वह व्यवस्था है जिसका आधार जन्म उतना नहीं जितना कि कर्म है। कर्म का विभाजन रंग के आधार पर नहीं हो सकता, इस विभाजन का आधार तो गुण, प्राकृतिक स्वभाव और प्रवृत्ति ही सकता है। सामाजिक व्यवस्था व संगठन को बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था कि सामाजिक कार्यों का विभाजन किया जाए जिससे कि एक के कार्यों में दूसरा अनावश्यक रूप में हस्तक्षेप न करे। इसी उद्देश्य से कर्मों और गुणों के आधार पर समाज के सदस्यों को विभिन्न समूहों में बांट देने की जो व्यवस्था चालू की गई उसी को वर्ण-व्यवस्था की संज्ञा दी गई।

अतः वर्ण-व्यवस्था सामाजिक कार्यों व कर्त्तव्यों को विभिन्न समूहों में विभाजित करने की वह व्यवस्था है जिसका आधार प्राकृतिक प्रभाव व गुण हैं। वर्ण व्यवस्था श्रम-विभाजन की सामाजिक व्यवस्था का ही दूसरा नाम है।

वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति सम्बन्धी सिद्धान्त
(Theory regarding Origin of Varna System)

वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति किस भांति हुई है इस सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। यही कारण है कि वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्त अलग-अलग विद्वानों द्वारा प्रतिपादित किए गए हैं। उनमें से कुछ प्रमुख सिद्धान्तों की विवेचना हम यहां करेंगे—

(1) **परम्परागत सिद्धान्त** (Traditional Theory)—वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति के सम्बन्ध में परम्परागत सिद्धान्त सबसे प्राचीन सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति को समझाने के लिए ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में वर्णित विवरण को स्वीकार करता है। इसके अनुसार विश्व-पुरुष के शारीरिक अंगों से विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति हुई है। उस प्रभु ने मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, जंघा से वैश्य तथा पदों से शूद्रों को उत्पन्न किया।

प्रत्येक अंग का पूरे शरीर के अस्तित्व में एक विशेष कार्य होता है। उसी प्रकार प्रत्येक वर्ण का भी समाज के अस्तित्व में कोई-न-कोई कार्य होता है। चूंकि मुंह से ब्राह्मणों की उत्पत्ति मानी जाती है, इस कारण ब्राह्मणों का कार्य मुंह से ही सम्बन्धित है अर्थात् उनका परम कर्त्तव्य लोगों को ज्ञान और उपदेश देना है। बाहु शक्ति का द्योतक है। अतः क्षत्रियों का मुख्य कार्य शक्ति के बल पर मानव-जाति की रक्षा करना है। वैश्य वर्ण की उत्पत्ति जांघ से हुई है और इस कारण उनका कार्य व्यापार और वाणिज्य से सम्बन्धित है क्योंकि समाज के अस्तित्व के लिए व्यापार और वाणिज्य उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना कि शरीर

Scanned with CamScanner

के अस्तित्व के लिए जांघ है। अन्त में, पैर का कार्य पूरे शरीर को गतिशील रखते हुए उसकी सेवा करना है और चूंकि शूद्रों की उत्पत्ति विश्व-पुरुष के पैरों से मानी जाती है, इस कारण शूद्र सेवा वर्ग (service class) का प्रतिनिधित्व करते हैं।

इस प्रकार समाज के विभिन्न समूहों में श्रम-विभाजन द्वारा समाज के कार्यों को सुचारु ढंग से चलाने के लिए ही 'विश्व पुरुष' ने वर्णों की सृष्टि की। पर जिससे एक वर्ण दूसरे पर अनावश्यक अधिकार न पा सके इस उद्देश्य से उन्होंने किसी भी एक वर्ण को सर्वशक्तिमान नहीं बनाया।

(2) रंग का सिद्धान्त (Theory of Colour)—महाभारत में भृगु ऋषि ने भारद्वाज को वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति का आधार मनुष्यों की त्वचा के विभिन्न रंगों को ही बताया है। उनके अनुसार ब्रह्मा ने पहले-पहल केवल ब्राह्मणों की सृष्टि की थी। पर इसके बाद त्वचा के विभिन्न रंगों के आधार पर अन्य तीनों वर्णों—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—की भी उत्पत्ति हुई। ब्राह्मणों का रंग सफेद, क्षत्रियों का रंग लाल, वैश्यों का रंग पीला और शूद्रों का काला होता है। यही स्वाभाविक है और यदि ऐसा न हुआ तो वह वास्तव में अप्राकृतिक अवस्था को ही दर्शाता है। अतः यदि कोई ब्राह्मण काले रंग का है या कोई शूद्र गोरे रंग का हो तो वे दोनों सांप से भी भयंकर और खतरनाक सिद्ध हो सकते हैं, उनका कदापि विश्वास नहीं करना चाहिए। यद्यपि आज कोई भी वैज्ञानिक इस मत से सहमत नहीं होगा, फिर भी भृगु का वर्ण का सिद्धान्त रंग पर आधारित है।

विभिन्न वर्ण के रंग से उनकी त्वचा या खाल का नहीं अपितु कर्म और गुण का रंग प्रकट होता है। उदाहरणार्थ, जो लोग भोग में अधिक आनन्द पाते थे, कठोरता व क्रोध का गुण जिनमें निहित था, जो वीरता के गुण के सम्पन्न थे तथा जो अपने 'धर्म' के प्रति उदासीन थे, इस प्रकार के लाल या लोहित गुण अर्थात् रजः प्रधान व्यक्ति क्षत्रिय वर्ण के कहलाए। उसी प्रकार जो लोग अपने द्विज धर्म से उदास हो खेती-बारी और पशुपालन आदि कार्य में लग गए, वे वैश्य कहलाए क्योंकि इन लोगों में पीत गुण अर्थात् तमोमिश्रित रजःगुण विशिष्ट रूप में पाए जाते हैं। उसी प्रकार जो लोग अपना धर्म छोड़कर असत्य बोलने लगे, अन्य प्राणियों को सताने लगे और जो प्रतिलोभ की लालसा से भरे थे, इस प्रकार के श्याम या कृष्ण गुण अर्थात् तमःप्रधान व्यक्ति शूद्र कहलाए।

(3) कर्म तथा धर्म का सिद्धान्त (Theory of Function and Religion)—वर्ण-उत्पत्ति को समझने के लिए कर्म व धर्म के सिद्धान्त का भी सहारा लिया जाता है। कहा जाता है कि वर्ण-व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था का ही एक अभिन्न अंग है। समाज-व्यवस्था को तभी बनाए रखा जा सकता है जबकि तत्कालीन समाज की मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए समाज के विभिन्न अंगों में कार्यों का उचित विभाजन तथा नियमन हो। वैदिक युग में वर्णों की उत्पत्ति इसी आधार पर हुई थी। उस समय के समाज की चार आधारभूत आवश्यकताएं थीं—(i) पठन-पाठन, धार्मिक तथा बौद्धिक कार्यों की पूर्ति; (ii) राज्य-व्यवस्था का संचालन तथा समाज की रक्षा; (iii) आर्थिक क्रियाओं की पूर्ति तथा (iv) सेवा।

Scanned with CamScanner

समाज व्यवस्था को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए यह आवश्यक था कि समाज को कुछ निश्चित श्रेणियों में बांटकर कर्मों का नियमन व सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती। इसी उद्देश्य से चार वर्णों की सृष्टि की गई जिससे प्रत्येक श्रेणी अपने कर्मों का निष्ठा से पालन करे। इस उद्देश्य से कर्मों का पालन ही प्रत्येक श्रेणी का धर्म (अर्थात् कर्त्तव्य) है—यह बात उसके सदस्यों में कूट-कूट कर भर दी गई। वर्ण द्वारा निर्धारित कर्म या कर्त्तव्य ही वर्ण-धर्म कहलाया। अतः समाज-व्यवस्था को स्थिर रखने के लिए धार्मिक कर्त्तव्य के रूप में कर्मों के विभाजन के फलस्वरूप ही समाज में वर्ण-व्यवस्था का उद्भव हुआ।

(4) गुण का सिद्धान्त (Theory of Traits)—वर्णों की उत्पति गुणों के आधार पर हुई है, यह विश्वास भी कुछ लोग करते हैं। इस विश्वास के अनुसार एक व्यक्ति किस वर्ण का सदस्य होगा यह इस बात पर निर्भर नहीं है कि उसका जन्म किस परिवार या वर्ण में हुआ है, अपितु इस बात पर निर्भर है कि उसमें किस प्रकार के गुण पाए जाते हैं।

भारतीय मान्यता के अनुसार गुण तीन प्रकार के होते हैं—सतोगुण, रजोगुण व तमोगुण। **मनु** के अनुसार जिस मनुष्य के स्वभाव में जिस गुण की प्रधानता होती है उसी के अनुसार उसे एक विशिष्ट वर्ण प्राप्त हो जाता है। **मनु** का कथन है कि ज्ञान सतोगुण का, अज्ञान तमोगुण का तथा राग-द्वेष रजोगुण के लक्षण हैं। आत्मा का निर्मल पक्ष जो प्रीतियुक्त, प्रशान्त तथा प्रकाशरूप है, वह सतोगुण है। जिनमें इसकी प्रधानता हो उन्हें ब्राह्मण माना जाना चाहिए।

फल प्राप्ति के उद्देश्य से कर्म करना, अधीरता तथा यशस्वी होने की इच्छा—ये रजोगुण के लक्षण हैं। क्षत्रियों में इस गुण का प्राधान्य रहा, इसीलिए उन्हें शासन-व्यवस्था लोक-रक्षा तथा शौर्य के कार्य सौंपे गए। इस प्रकार सतोगुण प्रधान ब्राह्मण, रजोगुण प्रधान क्षत्रिय, तमोमिश्रित रजोगुण प्रधान वैश्य तथा तमोगुण प्रधान शूद्र होता है। अतः व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए तो वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति किसी को ऊँचा या नीचा स्थान देने के लिए नहीं हुई है, अपितु प्रत्येक व्यक्ति को उसके स्वभावानुसार गुणों के आधार पर उन्नति के मार्ग में अग्रसर होने के लिए अवसर देने के लिए हुई है।

(5) जन्म का सिद्धान्त (Theory of Birth)—कुछ विद्वानों का कथन है कि वर्ण का आधार जन्म है, न कि कर्म। जो व्यक्ति जिस परिवार में जन्म लेता है उसी के अनुसार उसके वर्ण का निर्धारण होता है। **डॉ. घुरिये** का कथन है कि प्रारम्भ में केवल 'आर्य' और 'दास' ये दो वर्ण थे। आर्य लोग जहां भी पाए गए वहां उन लोगों ने वहां के आदिवासियों को पराजित किया और उन्हें 'दास' तथा इसी प्रकार के अन्य शब्दों से सम्बोधित किया।

इससे स्पष्ट है कि आर्यों ने यहां के मूल निवासियों को भी 'दास' कहकर पुकारा और अपने तथा उनके बीच अन्तर स्पष्ट करने के लिए 'वर्ण' शब्द का प्रयोग किया। साथ ही यह भी निश्चित है कि इस वर्ण-व्यवस्था या विभाजन का आधार पेशा या कर्म था, न कि रंग या जन्म, क्योंकि उस काल में अन्य कारणों की अपेक्षा कर्म पर अधिक

Scanned with CamScanner

बल दिया जाता था जैसा कि पतंजलि के महाभाष्य तथा अन्य पौराणिक और धार्मिक ग्रन्थों से स्पष्ट होता है। यदि इस प्रकार न होता तो विश्वामित्र, जो कि क्षत्रिय थे, ब्राह्मण न बन पाते। इस सम्बन्ध में ऐसे उदाहरण भी पाए जाते हैं जब शूद्र भी ब्राह्मण हो गए हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि वर्ण-व्यवस्था के निर्णायक कारण या आधार के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है। परन्तु इन मतभेदों का विश्लेषण करके हम इस निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं कि वर्ण-व्यवस्था केवल जन्म पर ही आधारित थी। यह कहना जितना गलत है उतना ही यह कहना भी अवैज्ञानिक है कि इस व्यवस्था का आधार केवल मात्र कर्म और गुण था और जन्म से इसका कोई भी सम्बन्ध न था।

वर्ण और जाति में भेद
(Distinction between Varna and Caste)

वर्ण और जाति के परस्पर सम्बन्धों के आधार पर इन दोनों में पाए जाने वाले अन्तरों को निम्न क्रम से समझा जा सकता है—

वर्ण (Varna)	जाति (Caste)
(1) 'वर्ण' शब्द संस्कृत की *'वृ'* धातु से बना है जिसका अभिप्राय चुनने या अपनाने से है, अर्थात् वर्ण वह है जिसको व्यक्ति अपने कर्म व स्वभाव के अनुसार चुनता है।	(1) 'जाति' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की *'जन'* धातु से हुई है जिसका अभिप्राय जन्म से है, अर्थात् जाति-व्यवस्था जन्म पर आधारित है।
(2) वर्ण-व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्ति को अपने कर्म व स्वभाव के अनुसार वर्ण चुनने की स्वतन्त्रता है।	(2) जाति-प्रथा में जन्म से प्राप्त होने वाले अधिकारों को विशेष महत्त्व दिया जाता है।
(3) वर्ण-व्यवस्था लचीली एवं परिवर्तनशील व्यवस्था है। ऐसा वर्णन मिलता है कि वैदिक काल में विभिन्न वर्णों में आपस में विवाह होते थे; खान-पान का कोई भेद-भाव नहीं था वरन् व्यक्ति अपने गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार वर्ण परिवर्तन कर लिया करते थे और इस परिवर्तन को समाज स्वीकार करता था।	(3) जाति जन्ममूलक है और यही कारण है कि यह अपने सदस्यों के विवाह, खान-पान व्यवसाय आदि के प्रति कठोर रुख अपनाती है।
(4) वर्ण की संख्या केवल चार (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र) है।	(4) जबकि जातियों की संख्या हजारों में है। जनगणना रिपोर्टों के अनुसार भारत में इस समय लगभग 4,000 से अधिक जातियाँ व उपजातियाँ हैं।

Scanned with CamScanner

वर्णों के कर्त्तव्य या 'वर्ण'-धर्म
(Duties of Varnas or 'Varna' Dharma)

हिन्दू शास्त्रकारों ने विभिन्न वर्णों के कुछ निश्चित कर्त्तव्यों या 'धर्म' का भी निर्धारण किया है स्मृतियों के अनुसार चारों वर्णों के कुछ सामान्य 'धर्म' या कर्त्तव्य भी हैं जैसे जीवित प्राणियों को हानि न पहुंचाना, सत्य की खोज करना, अनधिकारपूर्वक किसी दूसरे की वस्तु लेने से बचना, चरित्र एवं जीवन की पवित्रता को बनाए रखना, इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना, आत्मसंयम, क्षमा, ईमानदारी, दान आदि सद्गुणों का अभ्यास करना। फिर भी प्रत्येक वर्ण के कुछ अलग-अलग कर्त्तव्य या 'धर्म' भी हैं, इन्हीं को वर्ण-धर्म कहते हैं।

मनु के अनुसार ये वर्ण-धर्म निम्न हैं—

(1) **द्विजों में श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं।** ब्राह्मण का आधार उसकी सात्विक वृत्ति तथा उसका निश्चल स्वभाव है। इसी दृष्टिकोण से मनुस्मृति में ब्राह्मणों के इन गुणकर्मों का उल्लेख किया गया है—ब्राह्मण को चाहिए कि वह अपने तिरस्कार को विष के समान समझता हुआ उससे सदा डरता रहे और आदर को अमृत समझता हुआ उसकी सदा कामना करता रहे। ब्राह्मण को चाहिए कि वह सदा वेद का अभ्यास करता रहे तथा ज्ञान का अर्जन करता रहे, यह उसका तप है। ब्राह्मण का काम पढ़ना और पढ़ाना, यज्ञ करना और कराना, दान देना और दान लेना है; परन्तु दान लेने का अवसर प्राप्त होने पर भरसक प्रयत्न यही करे कि दान न ले, क्योंकि दान ग्रहण करने से उसका ब्रह्म-तेज कम हो जाता है।

(2) मनु के अनुसार क्षत्रिय का प्रमुख कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करना, युद्ध करना, दान देना, यज्ञ करना आदि है।

(3) गाय-बैल आदि पशुओं की रक्षा करना, दान अग्निहोत्र आदि करना, व्यापार करना, ब्याज पर रुपया लेना-देना, और खेती करना—ये वैश्य के कर्त्तव्य कर्म हैं।

(4) शूद्र का कार्य उपरोक्त तीन वर्णों की बिना ईर्ष्या के सेवा करना है।

व्यक्ति एक ऐसे परिवार में क्यों जन्म लेता है जिसका कि पेशा निम्न है—इस प्रश्न का उत्तर 'कर्म' का सिद्धान्त दे सकता है। भाग्य बड़ा शक्तिशाली है, अपने पूर्वकार्यों के परिणामों से बचना बड़ा कठिन है। यह पूर्वजन्म में किए गए बुरे कर्म ही हैं जोकि पाप को उत्पन्न करने वाले हैं। हममें से प्रत्येक अपने कार्यों से प्रभावित है और हम सबको यह प्रयत्न अवश्य करना चाहिए कि हम किस प्रकार अपने दुष्कर्मों का प्रायश्चित कर सकते हैं तथा बुरे कर्मों से मिलने वाले कठोर दण्ड से अपने को किस प्रकार मुक्त कर सकते हैं।

Scanned with CamScanner